अङ्क-२६
जुलाई-दिसम्बर २०१५

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

वेद विहित पर्यावरण-संरक्षणाभिधायी विवेचना

डॉ. उमा रानी

पर्यावरण- संरक्षण में वेदों का योगदान -

परि + आवरण इन दो पदों के मेल से बने पर्यावरण शब्द का अर्थ है - चारों ओर से घेरने वाला । इस घेरे में सजीव व निर्जीव सभी तत्त्व विद्यमान हैं।[१] भारतीय ऋषियों ने पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन हेतु स्वमनीषा द्वारा समस्त विज्ञान को वैदिक मन्त्रों में समाविष्ट करके विनाश के भय से आध्यात्मिक विषयों का वैज्ञानिक विषयों में मिश्रित किया, वे पर्यावरण संरक्षणार्थ अपना सर्वस्व अर्पण करने में तत्त्व रहे, जैसे अथर्ववेद में -

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथ्वी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयस्मि स आत्मानं निदधैद्यावपृथिवीभ्यां गोपीथाय॥[२]

अर्थात् मेरी आँखें सूर्यवत् प्रकाशमान, प्राण वायु समान गतिमान, आत्मा अन्तरिक्ष समान मध्यवर्ती और शरीर पृथ्वी तुल्य सहनशील है, ऐसा मैं विना आवरण प्रसिद्ध हूँ सर्वज्ञात हूँ, अपनी आत्मा सूर्य और पृथ्वी-रक्षार्थ अर्पित करता हूँ। वेद प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति अन्तरङ्ग आत्मीयता को प्रकट करके उनके संरक्षण व संवर्धनार्थ मानव का आकर्षित करते हैं। इन में पर्यावरण सुरक्षा, शुद्धता व संवर्धन हेतु प्रकृति-सङ्ग ऋषियों द्वारा विवेकपूर्ण व्यवहारों, सामञ्जस्य और संवेदनशीलता के परिप्रेक्ष्य में प्रदत्त उपदेशों का वर्णन पञ्चतत्त्वों के सन्दर्भ में इस प्रकार है[३] -

भूमि-संरक्षण -

पृथ्वी जैव विविधता की पोषक व रक्षक है। ऋषियों का अधोलिखित उद्गार भूमिरूपी माता की रक्षा के अन्तर्भाव को प्रकट करता है - **'माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः'**[४] भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ। अथर्ववेद का सम्पूर्ण पृथिवीसुक्त धरा के साथ मानवीय-सम्बन्ध, आत्मीयता, संवेदना, समृद्धि, कर्त्तव्य और रक्षादि के सन्देश से परिपूर्ण है। पृथिवी की सुरक्षा व संवेदना का अनुपम निदर्शन निम्नलिखित है -

---

१ वेदों में पर्यावरण शिक्षा, पृ. १
२ अथर्ववेद, ५/९/७
३ वदों में पर्यावरण शिक्षा, पृ. ७२
४ अथर्ववेद, १२/१/१२

यतते भूमि विस्वनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।[१]

हे भूमि! तेरा जो भी भाग मैं खोदूँ, वह पुनः शीघ्र उग जावे। मैं तेरे मर्मस्थल पर चोट न कर पाऊँ और तेरे हृदय को हानि न पहुँचाऊँ - पृथ्वी के प्रति यह संवेदना भूमि-संरक्षण का मार्ग प्रशस्त करती है।

अन्य उदाहरण -

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥[२]

हे पृथ्वी ! हमारे लिए तुम्हाती गोद नीरोग और राजरोगरहित हो। दीर्घकाल तक अपनी आयु को जाग्रत करते हुए हम आपके लिए बलिदान देने वाले बने रहें। पृथिवीरक्षार्थ सर्वस्व समर्पण की भावना का यह दृष्टान्त अनुकरणीय है। अथर्ववेद में आत्मोत्सर्ग का यह सन्देश भूमि-संरक्षणार्थ समस्त विश्व का मार्गदर्शक है, अतः स्वरक्षक पृथ्वी की रक्षा करना हमारा परमकर्त्तव्य है।

जल - संरक्षण -

इस धरा पर प्रकृति-देन जल, सुखदायक, जीवनाधार व रक्षक हैं। ऋषि मेघातिथि काण्व कहते हैं-

अप्स्वऽन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये देवा भवत वाजिनः।[३]

हे मनुष्यों ! अमृत-समान और गुणकारी जल का सदुपयोग, प्रशंसा एवं स्तुतिकारक बनो। मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली नदियों को ऋषियों के मातृवत् पूजा है -

ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमाना शिवादेवीरशिषदा
भवन्तु सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु।[४]

समस्त नदियाँ हमारे लिए जल से सींचती हुई, सब को सन्तुष्ट करती हुई, भोजनादि व्यवहार में प्राप्त होती हुई, आनन्द व सुखदानी, अन्नादि से वनस्पति से प्रेम करने वाली हों। ऋग्वेद में सबको शक्ति-प्रदायक जल को माता समान पूज्य माना गया है -

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।[५]

जल हमारी माताएँ हैं, वे हमें घृतसमान जल से बलयुक्त और पवित्र करें, ऐसे सभी जल जो कहीं भी स्थित हैं, रक्षणीय हैं। जल संरक्षण-हेतु वर्षा जल व बहते जल का महत्त्व विशेषतः वेदों में प्रकट है। अथर्ववेदानुसार वार्षिकी-जलों में पोषक तत्त्व पाए जाते हैं -

---

१ अथर्ववेद, १२/१/३५
२ अथर्ववेद, १२/१/६२
३ ऋग्वेद, १/२३/१९
४ वही, ७/५०/४
५ वही, १०/१७/१०

अपामहं दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम्
अपामहं प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः।[१]

हे मनुष्यो ! आकाश में बसने वाले स्रोतों से निकलने वाले, फैले हुए जलों में पोषण-शक्ति होती है, यह तुम निश्चय से जानो, अतः इनसे वेगवान् और बलवान् पुरुष बन जाओ। जल को दूषित न करके उसके प्रति सम्मान व कृतज्ञता की भावना बनाए रखनी चाहिए। ऋग्वेद में ऋषि कहता है -

या आपो दिव्या उतवा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः
समुद्रार्था या शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।[२]

हे मानवों ! जो जल शुद्ध झरते हैं, खोदने से या स्वतः उत्पन्न होते हैं, समुद्रार्थ हैं, पवित्र करने वाले वे देदीप्यमान जल संसार में मेरे रक्षक हों। इस प्रकार वैदिक आर्य सदैव शुद्ध वर्षा की कामना व प्रयत्य करते थे -

शं नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभिस्रवन्तु नः।[३]

दिव्यमान् गुणवाले जल हमारी अभीष्ट सिद्धि, पीने तथा रक्षार्थ सुखदायक हों, हमारे रोग की शान्ति और अभय हेतु चारों ओर से बरसें।

शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।[४]

हमारे लिए वर्षा के जल कल्याणकारी हों।

यजुर्वेद में जल-प्रदूषित करणार्थ मना किया गया है - **मा आपो हिंसीः।**[५] जल को नष्ट मत करो, हानि मत पहुँचाओ। इस कथन से जल को शुद्ध रखने के साथ उसको समाप्त न करने की बात स्पष्ट प्रतीत होती है। ऋग्वेद में जलाशयों के जल-रक्षणार्थ खडे वृक्षों को काटने से इन्कार किया गया है - **यर्दर्णसं मोषथा वृक्षं।**[६] जल-किनारे खडे वृक्षों को मत उखाडो। ऊपरलिखित वर्णन से व्यक्त है कि वैदिक-युग में जल - संरक्षण की प्रता प्रचलित थी। वेदों में जल - संरक्षणार्थ उपलब्ध निर्देशों और उपदेशानुसार हमें जल का उचित प्रयोग करते हुए उसे संरक्षित करना चाहिए।

---

१ अथर्ववेद, १९/२/४
२ ऋग्वेद, ७/४९/२
३ अथर्ववेद, १/६/१
४ अथर्ववेद, १/६/४
५ यजुर्वेद, ६/२२
६ ऋग्वेद, ५/५४/६

वायु - संरक्षण -

जीवनार्थ पर्यावरण से उपलब्ध आवश्यक ऑक्सीजन को वेदों में प्राणवायु कहा गया है, वेदानुसार वायु की शुद्धता बनाए रखना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। इसे प्रदूषित करने वाला अपराधी व अक्षम्य है, अथर्ववेद पवन देवता से कहता है कि वायु-प्रदूषित करने वाले कार्यों और प्रवृत्तियों को नष्ट किया जाए -

वायो यत ते तपस्तेन तं प्रतितप।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥[१]

हे पवन ! जो तेरा प्रताप है, उससे उस पर प्रतापी हो, जो हम से अनिष्ट करवाता है या जिससे हम अप्रिय करते हैं। अथर्वा ऋषि कहते हैं - सबसे बडे शोधक तत्त्व वायु को हानि पहुँचाने पर वह सबको क्षति पहुँचा सकता है -

वायो यत ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान्
द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।[२]

हे पवन ! जो तुम्हारी शोधनीय शक्ति है उससे दोष को शुद्ध करो, जो हमसे अप्रिय करवाता है। अथर्ववेद में वायु से ही वायु-रक्षा की प्रार्थना की गई है -

वायो यत ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान्
द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।[३]

हे पवन ! जो तेरा तेज है उससे उस दोष को तेजरहित कर दो, जो हमसे अप्रिय कर या जिससे हम अप्रिय करें। अन्तरिक्ष के विकारों से वायु हमारी रक्षा करता है, अतः ऋग्वेद में वायु से प्रार्थना की गई है - पातु वातो अन्तरिक्षात् ।[४] अर्थात् वायु अन्तरिक्ष के विकारों से हमारी रक्षा करे। सभी प्रकार के पवनों से कहा गया है - त्रायन्तां मरुतां गणः।[५] हे वायुगण हमारी रक्षा करें। ईश्वर वरदान देता है कि - हे प्राणी तू दुःखी न हो। सम्पूर्ण प्रकृति तेरे अनुकूल रहे -

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्रमेष्ठाः।[६]

---

१ अथर्ववेद, २/२०/१
२ अथर्ववेद, २/२०/४
३ अथर्ववेद, २/२०/५
४ ऋग्वेद, १०/१५८/१
५ ऋग्वेद, १०/१३७/५
६ अथर्ववेद, ८/१/५

हे पुरुष ! अन्तरिक्ष में चलने वाला वायु तुम्हारे लिए शुद्ध बहे, जलधाराएँ अमृत-वस्तुएँ बरसाएँ। तेरे शरीरार्थ सूर्य शान्ति से तपे, मृत्यु तुझ पर दया करे, तु दु:खी मत हो। मरुत्गणों से अतिवेग से प्रवाहित होने पर ऋषि उनसे खेतों की रक्षार्थ प्रार्थना करते हुए कहते हैं - **यत्सीमन्तं न धूनुथ।**[१]

हे पवन ! तुम तृण, वृक्षादि - युक्त खेतों को मत उजाड़ो।

ऐसी प्रार्थना पर्यावरण - सुरक्षा की चतना को जागृत करती है जो पर्यावरण - संरक्षण में वेदों की महती देन है।

अग्नि - संरक्षण -

वेदों में पर्यावरण निर्माण व संरक्षण की आधारभूत शक्ति के रूप में अग्नितत्त्व की स्तुति की गई है। मधुच्छन्दा ऋषि द्वारा कथित ऋग्वेद का प्रथमपद 'अग्निमीले'[२] अग्निसंरक्षण के सभी पक्षों की व्याख्या में समर्थ है। वेदों में एक शक्ति के रूप में अग्नि के त्रिविध रूप हैं - पार्थिव, अन्तरिक्ष स्थानीय (विद्युत) तथा द्यौ स्थानीय सूर्य। वेदों में सौर - ऊर्जा को पर्यावरण - संरक्षण में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। सूर्य की ऊर्जा और द्युति विकास और वृद्धि की द्योतक होने से सर्वार्थ अपेक्षित है -

सूर्यः यतेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च।[३]

हे सूर्य ! जो तुम्हारी दीपन शक्ति है, उससे हमें प्रदीप्त करो।

इसकी निरन्तरता बनाए रखने हेतु अथर्ववेद में ऋषि कहता है -

रोहितो विश्वमिदं जजान सत्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु।[४]

सूर्य सब का उत्पादक और प्रजाओं के अन्दर है, जिसने इस विश्व को उत्पन्न किया, ऐसे बड़े पोषक सूर्य ! तुम्हारे राष्ट्रार्थ धारण करें। सूर्य- रश्मिपान वेदों की औषधिविज्ञान को महती देन है। ऋग्वेद में सूर्य की प्रातः कालीन किरणें रोग-निवारणार्थ समर्थ हैं, इस का वर्णन है -

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।[५]

अर्थात् मित्रों द्वारा सत्कार योग्य, सभी औषधियों व रोग निवारक विद्याओं के ज्ञाता विद्वान् सूर्य ! उदित होकर ऊपर गगन में चढ कर हमारे मानस, हृदय, पीत, शरीर, चर्म और नेत्र रोग नष्ट करें। ऐसे रोगनिवारक, रक्षक स्वभाव सूर्य की हमें सुरक्षा करनी चाहिए। अथर्ववेद में अग्नितत्त्व को हानि पहुँचाने

---

१ ऋग्वेद, १/३७/६
२ ऋग्वेद, १/११
३ अथर्ववेद, २/२१/३
४ अथर्ववेद, १३/१/१
५ ऋग्वेद, १/५०/११

वाले के लिए दण्डविधान भी है - **अग्नेयतते तपस्तेन तं प्रतितप।**[१] हे अग्नि! जो तुम्हें कष्ट पहुँचाए, उसे तुम तपाओ, पीड़ित करो। साथ में अग्नि प्रार्थना की गई है कि जिस कारण लोग तुम्हें दूषित करते हैं, उन कारणों को हटाओ -

अग्ने यत ते शोस्विस्तेन तमप्रति शोच
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।[२]

हे अग्नि ! जो तुम्हारी शोधन-शक्ति है, उसे उस दोष को हटाओं, जो हमसे द्वेष करवाता है अथवा जिस कारण अप्रिय कार्य हम करते हैं। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में सौर-ऊर्जा का यशोगान प्राप्त होता है - **इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणः ।**[३] अर्थात् हे सूर्यदेव ! तुम्हारी प्रदत्त ऊर्जा और अन्न कार्यसाधक हैं, हमें आप श्रेष्ठ कर्म में लगाएं - वेदों में ऋषियों ने प्राकृतिक ऊर्जा को कार्य में लाने हेतु आग्रह किया है। सौर-ऊर्जा प्राकृतिक व गैर परम्परागत ऊर्जा का ऐसा बड़ा स्रोत है, जो पर्यावरण शुद्धता के संरक्षण में शत-प्रतिशत सक्षम है। वर्तमान पर्यावरण संकट में उर्जा संकट के समाधानार्थ सौर-ऊर्जा के विविध नव प्रयोग किए जा रहे हैं, इस परिप्रेक्ष्य में वेदों में वर्णित सौर-ऊर्जा के विविध नव प्रयोग किए जा रहे हैं, इस परिप्रेक्ष्य में वेदों में वर्णित सौर-ऊर्जा के महत्त्व और उपयोग निश्चित रूप से ग्रहण करने योग्य हैं, जो ऊर्जा समस्या को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

वनस्पति-संरक्षण -

ऋषियों की इस भारतभूमि में सदैव गुणकारी वनस्पतियाँ उपलब्ध होती रही हैं। वैदिक ऋषियों ने समस्त वृक्षों और वनस्पति से मानव-आकांक्षाओं को जोड़ते हुए इनको सुरक्षा प्रदान की है। भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से पेड़ पौधों, खेतों इत्यादि को पूजनीय माना गया है और इनके प्रति आदरभाव दृष्टिगोचर होता रहा है, यही कारण है आज भी भारतीय स्त्रियों द्वारा विभिन्न व्रत-त्यौहारों पर पीपल, तुलसी, नीम, वट, आम्र, केला और जामुनादि वृक्षों की पूजा किया जाना वृक्षों के प्रति उनकी आत्मीयता, सम्मान और संरक्षण की भावना को परिलक्षित करवाता है। वेदों में वृक्षादि को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण वनसम्पदा, वनस्पतिजगत, वृक्षों व उनके संरक्षकों और पालकों को भी वन्दनीय एवं पूजनीय कहा गया है। वनरक्षकों को नमस्कार करते हुए यजुर्वेद में कुत्स ऋषि कहते हैं -

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो वनानां पतये नमः
वृक्षाणों पतये नमः औषधीनां पतये नमः
वृक्षाणां पतये नमः अरण्यानां पतये नमः।[४]

---

१ अथर्ववेद, २/१९/१
२ अथर्ववेद, २/१९/४
३ वेदों में पर्यावरण शिक्षा, पृ. ९४
४ यजुर्वेद, १६/१७-२०

अर्थात् जिनमें सूर्य की हरणशील किरणें समाहित होती हैं, ऐसे महावृक्षों को नमस्कार! वनपालकों, रक्षकों, वृक्षों और औषधियों की रक्षा करने वालों व वनसंरक्षकों को नमस्कार। ऋषि निरन्तर समस्त वनस्पतियों का संरक्षण और संवधर्न करते हुए वनौषधियों के सदुपयोग से सब को लाभान्वित करते रहे हैं क्योंकि ये दैहिक, दैविक ओर भौतिक कष्टों को दूर करती हैं। वनसम्पदा के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते अथर्ववेद में ऋषि कहता है कि -

तिस्रो दिवास्त्रिस्रः पृथिवीः षड्वेमाः प्रदिशः पृथक्
त्वायाहं सर्वाभूतानि पश्यामि देव्योषधे।[१]

हे दिव्यशक्ति तापनाशक औषधि ! तेरी सहायता से मैं तीनों लोक, पृथ्वी लोक, छः फैली हुई दिशाएँ तथा जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों को अनेक प्रकार से देखूँ। वैदिक ऋषियों के अनुसार विविध औषधियों के महत्त्व और गुणों का, वनादि वृक्षों की पोषणता का ज्ञान सभी को होना चाहिए ताकि लोग अनेक गुणों से लाभान्वित होते हुए उनका संरक्षण व संवर्धन करें। यद्यपि ये वनौषधियाँ अपना संवर्धन स्वयं करती हैं इसी सन्दर्भ में अरण्यानी सुक्त में एरम्मद ऋषि कहते हैं -

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।[२]

हे वनसमूह! तुम पहले से अपने आप आगे-आगे बढ़ते रहते हो। ऋषि माता वनदेवी से प्रार्थना करते हैं कि वनौषधियों को भविष्य में सुरक्षित रखें। अरण्यानी सुक्त पर्यावरण रक्षा, वानस्पतिक समुन्नत चेतना का ही नहीं, अपितु मानव कल्याणार्थ उनके उपयोग व नियोजन की व्यापक जानकारी का अभूतपूर्व निदर्शन है। भूमि, जलाशय, समुद्र, पर्वतों पर उत्पन्न वृक्षादि वनस्पति नितान्त रक्षणीय हैं, संवर्धनीय हैं, वायु की गुणवत्ता इनसे बढ़ती है जिससे पर्यावरण शुद्ध होता है क्योंकि वनौषधियों को स्पर्श करके बहता हुआ पवन भी गुणकारी बन जाता है, ऋग्वेद में पवन से प्रार्थना की गई हे -

यत्सिन्धौ यदसिक्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः यत्पर्वतेषु भेषजम् ।[३]

हे रक्षक महायज्ञकर्ता मरुद्गण! आप प्रवाहित जलाशयों, कृष्णजल वाली नदी, समुद्रों और पर्वतों पर जो औषधि है, उसे प्रजाहितार्थ लाएँ। वृक्षादि की रक्षा हेतु पवनों से ऋग्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है - **यत्सीमन्तं न धूनुथ।**[४] अर्थात् हे पवन। आप तृण, वृक्ष और हमारे खेतों को मत उजाड़ो। वेदों में ऋषियों ने विभिन्न पक्षियों के आश्रयस्थल वृक्षों को भी काटने से इन्कार किया है - **मा काकम्बीरमुद बृहो**

---

[१] अथर्ववेद, ४/४/२०/२
[२] ऋग्वेद, १०/१४६/१
[३] ऋग्वेद, ८/२०/२५
[४] ऋग्वेद, १/३७/६

वनस्पतिम्[१] **-** हे विद्वानों ! कौओं आदि पक्षियों के पोषक वनादि वृक्षों को मत काटो। जलाशयों के किनारे खड़े वृक्षों को काटने से भी ऋषि इन्कार करता है - **यर्दर्णस मोषेथा वृक्षम्**[२] - हे मानव जल किनारे खड़े वृक्षों को मत काटो । ऋग्वेद के ऋषि के अनुसार वन और वृक्षादि से उपलब्ध संसाधन सदैव तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब इनके संरक्षण हेतु समर्पण की भावना सबके मन में हो। वनस्पति जगत् की सुरक्षार्थ अपना सर्वस्व अर्पित करना और स्वयं का समर्पण यही दर्शाता है कि मानव के जीने हेतु वन एवं वृक्षों की अनिवार्यता है -

औषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरूपब्रवे
सनेयमश्वं गां वासं आत्मनं तवं पुरुष।[३]

हे मातृवत् हितकारिणी औषधियों ! मैं देवियों समान सुखदायक तथा रश्मियों का रोगनाशक रूप वाले तुम्हारे ज्ञान से दूसरों को अवगत कराता हूँ, मैं वैद्य आपकी प्रात्यर्थ अश्व, भूमि, गौ, वस्त्र औश्र स्वयं को भी तुझे प्राप्त करने के लिए समर्पित करता हूँ। वृक्षों की रक्षा व सतत् प्राप्ति हेतु ऋषियों का यह अर्पण ग्रहण करने योग्य है, ऐसे समर्पण की भावना तभी विकसित होगी जब सभी को वनस्पति के गुणों का ज्ञान हो और इनके प्रति कृतज्ञ हों। वृक्षों के प्रति बलिदान की भावना ने ही तात्कालिक समाज में पर्यावरण को सुरक्षित रखकर सुरम्य बनाए रखा। वैदिक काल में ऋषियों का वनस्पति के प्रति आत्मीयता और मानवीयता पूर्ण व्यवहार रहने के कारण उनकी परमचेतना का विकास होता रहा। जनहित की भावना से प्रेरित ऋषियों की यह परम्परा वर्तमान में भी यदि प्रचलित रहती तो आज पर्यावरण संकट का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि ऋषियों का यह भारतवर्ष गुणकारी औषधियों से युक्त रहा है, अतः उन्होंने वनस्पतियों के संरक्षण व संवर्धन पर बल दिया है।

यज्ञ द्वारा पर्यावरण संरक्षण -

यजुर्वेद पूर्णतः यज्ञपरक हैं संसार की समस्त प्रक्रिया यज्ञमय है। पर्यावरण की सुरक्षा यज्ञ में और यज्ञ का संरक्षण उसके निरन्तर क्रियान्वयन में विद्यमान है। यज्ञ से सुगन्धित द्रव्यों का धुआँ अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर वहाँ स्थित प्रदूषण को समाप्त करने में समर्थ हे जिससे शुद्धता होती है, अतः शुद्धतत्त्वों के रक्षणार्थ यज्ञ करना चाहिए।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमये स्वाहा।
अपहताऽसुरा रक्षांसि वेदिषदः।[४]

---

१ ऋग्वेद, ६/४८/१७
२ ऋग्वेद, ५/५४/६
३ ऋग्वेद, १०/९७/४
४ यजुर्वेद, २/२९

सभी पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने वाले अग्नि और सोम को विद्वानों के सहयोग से संयुक्त करके संसार में फैले दोषों को दूर करिये एवं प्रकृति-व्याप्त गुणों की रक्षा कीजिए। यह यज्ञ से ही सम्भव है, इसी से विश्व की सत्ता और सुरक्षा है। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है - **पुरुषों वाव यज्ञः**[१] मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है आन्तरिक दृष्टि से वह मानव को श्रेष्ठ भावनाओं से प्रेरित करता है और ब्राह्यरूप से वातावरण को पवित्र करने वाला है। भौतिक व आध्यात्मिक शुद्धिकरण तथा दोनों में सामंजस्य बनाना ही वैदिक यज्ञों का प्रमुख उद्देश्य है। स्वयं और स्वयं के कारणों को जानने व सुरक्षित रखने में ही सम्पूर्ण पर्यावरण सुरक्षित है।[२] पर्यावरण संतुलन हेतु वेद ग्यारह तत्त्वों को संयुक्त रूप से यज्ञ द्वारा हविषा देने का निर्देश करता है -

यो देवाः पृथिव्यामेकादश स्थते देवासो हविरिदं जुषध्वम्।[३]

हे विद्वानों ! पृथिवी पर विद्यमान ग्यारह तत्त्वों, इस ग्रहण करने योग्य हविषा का सेवन करो। प्रस्तुत मन्त्र में यज्ञ द्वारा बाह्य व आन्तरिक तत्त्वों का सन्तुलन दर्शाया गया है साथ में पर्यावरणीय कारकों को पुष्ट करणार्थ कहा गया है। कारण स्वरूप होने से स्वयं के अस्तित्व हेतु इनका रक्षण व पोषण भी आवश्यक है। इनके पोषणार्थ यज्ञ एक व्यावहारिक प्रक्रिया है, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक दृष्टि से श्रेष्ठ भावनाओं और सम्बन्धों को स्थापित करने वाले यज्ञ, वैज्ञानिक दृष्टि से वायु को शुद्ध और वृक्षों को कार्बन द्वारा पोषित करते हैं, वर्षा करते हैं[४], बिना जल खेती नहीं की जा सकती इसलिए वेद में कहा है -

कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्[५] - यज्ञ की सहायता से खेती करो।

वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्[६] - वर्षा हेतु यज्ञ करो।

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु[७] - जब तक हम चाहें तब तक वर्षा हो, वांछितस्थान पर हो। कृषि, वायु, वृक्ष- इनके संरक्षण एवं शुद्धीकरण में यज्ञकार्य लाभप्रद है। वैदिककाल में पर्यावरण में व्याप्त अनावश्यक जीवाणुओं व अन्य विकारों को समाप्त करणार्थ वर्ष पर्यन्त ऋतु अनुसार यज्ञ किए जाते थे ताकि पर्यावरण प्राणियों के अनुकूल बना रहे। सामाजिक प्रक्रिया के रूप में व्यवहृत यज्ञ ने पर्यावरणीय शक्तियों को सदैव शुद्ध, पोषित व सुरक्षित रखा।

---

१ छान्दोग्योपनिषद्, ३/१४
२ वेदों में पर्यावरण शिक्षा, पृ. १०८
३ अथर्ववेद, १९/४/२७/१३
४ वेदों में पर्यावरण शिक्षा, पृ. १०८
५ यजुर्वेद, १८/९
६ यजुर्वेद, १८/९
७ यजुर्वेद, २२/२२

निष्कर्ष -

पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए वेद में मानव को पर्यावरण के प्रति सजग रहने तथा उसके ज्ञान-हेतु पुनः-पुनः आदेश दिया गया है -

पूषा विष्णुर्हवनं सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम्।[१]

अर्थात् सब का पोषक सूर्य, सर्वत्र व्यापक वायु, सप्तस्थलों पर उपलब्ध नदी आदि का जल, व्यापक अन्तरिक्ष, बादल, वनस्पति और पृथिवी सब मेरी पुकार सुने। हम मानव इनके गुणों को जानें तथा इनसे यथोचित उपकार ग्रहण करें। इस प्रकार वेदों में प्राकृतिक देवों का आह्वान करके, उनसे प्रार्थना व अनुकूल बने रहने हेतु निवेदन करने में ऋषियों द्वारा सजगता दिखाई गई है क्योंकि पूर्णतः सुरक्षित व शुद्ध होने पर ही तत्त्वों की अनुकूलता बनी रह सकती हैं इस प्रकार प्रकृति और स्वयं के प्रयोजन में प्राकृतिक संरक्षण स्वतः सिद्ध हो जाता है। वेदों में पर्यावरण संरक्षार्थ इस बात पर बल दिया गया है कि नियमानुसार निज कार्य करती प्रकृतिवत् यदि मानव भी प्रकृति के नियमित शासन में स्वकार्य करे अर्थात् पर्यावरण के नैसर्गिक चक्र को न तोड़ते हुए उसके अनुकूल रहते कार्य करे तब प्रकृति तो सुरक्षित होगी ही साथ में प्राकृतिक नियमानुसार कृतकार्य भी कल्याण व शान्ति-प्रदायक होंगे। पर्यावरण सुरक्षार्थ प्रकृति से प्रेरणा लेने के लिए ऋषियों द्वारा प्रदत्त संकेतों को ग्रहण करते हुए इसके गुणों को भी स्वीकारना चाहिए क्योंकि यदि मानव तीक्ष्णबुद्धि और क्षमाभाव जैसे गुणों को अपनाते हुए निःस्वार्थभाव से पर्यावरण पर उपकार करता है तो उस उपकार में ही पर्यावरण संरक्षण निहित है। निष्कर्षतः वेदों में पर्यावरण-सुरक्षा हेतु उपलब्ध विपुल सामग्री से पर्यावरण संरक्षण में वेदों का योगदान स्पष्टतः परिलक्षित होता है। पर्यावरण संकट जो वर्तमान समय में विश्वस्तरीय समस्या बन चुकी है उसके समाधानार्थ आज के बुद्धिजीवी मानव को अपने भौतिक सुखार्थ संरक्षक प्रकृत का भक्षक न बनकर, एक रक्षक के रूप में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन न करके वेदों में वर्णित पर्यावरण संरक्षण विषयक सुझावों को अपनाते हुए पर्यावरण सुरक्षा के प्रति जागृत होना चाहिए तभी पर्यावरण संरक्षण तथा मानव, राष्ट्र और विश्वकल्याण सम्भव है।

डॉ. उमा रानी
असिस्टैंट प्रोफेसर, संस्कृत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऊना (हिमाचल प्रदेश)

[१] ऋग्वेद, ८/५४/४